बदलते पड़ावों पर चौकस निगाह

भिन्न रूप से सक्षम बच्चों का विशेष विद्यालय से नियमित विद्यालयों में परागमन (ट्रांज़िशन): एक अध्ययन

शारदा कुमारी*

1990 के दशक में सलमांका में हुई विश्व कांफ्रेंस के बाद 'इंक्ल्यूसन' सभी बच्चों की शिक्षा के लिए प्रभावशाली नीति के रूप में उभरा। आज के समय की माँग यह है कि एक लचीली, व्यापक और संतुलित पाठ्यचर्या बने जो सभी बच्चों की आवश्यकताओं को पूरा कर सके। एक इंक्ल्यूसिव पाठ्यचर्या ऐसे स्कूलों की आवश्यकता को मान्यता देती है जो विद्यार्थियों के वैयक्तिक अंतरों को ध्यान में रखती हो और इतनी लचीली हो कि विद्यार्थी अपने लक्ष्यों को पाने में समर्थ हो सकें। शिक्षाशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों के प्रयास यही हैं कि इंक्ल्यूसिव पाठ्यचर्या के क्रियान्वयन हेतु किसी तरह की कमी न रह जाए और बच्चों में स्वावलंबन एवं स्वतंत्र जीवन कौशल विकसित किए जाएँ।

वर्तमान स्थिति यह है कि जहाँ एक ओर सभी विद्यालयों को 'इंक्ल्यूसिव' बनाने पर ज़ोर दिया जा रहा है तो दूसरी ओर 'विशेष स्कूल' भी विशेष ज़रूरतों वाले चुनौतीपूर्ण बच्चों की शिक्षा संबंधी ज़रूरतों को पूरा कर रहे हैं। बहुत-से बच्चे यहाँ दाखिला लेते हैं और विशेष सुविधाओं का लाभ उठाते हैं। विद्यालयी शिक्षा के स्तर तक तो इस प्रकार की सुविधाओं वाले विद्यालय मौजूद हैं।

परंतु उच्च शिक्षा एवं व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के लिए बच्चे 'नियमित संस्थाओं'/'नियमित शिक्षण संस्थाओं' में प्रवेश लेते हैं। यहाँ आकर विद्यार्थी किस प्रकार से समायोजन स्थापित कर पाते हैं, यह सामाजिक, शैक्षिक ही नहीं अपितु नीतिपरक विषय का मुद्दा है। प्रस्तुत शोध अध्ययन बच्चों के ऐसे अनुभवों और अनुभवों के आधार पर उपजे शैक्षिक निहितार्थों पर प्रकाश डालता है जो एक स्तर की शिक्षा विशेष स्कूलों में पूरी करने के दौरान अर्जित किए गए हैं।

* *वरिष्ठ प्रवक्ता*, मं. शि. एवं प्रशिक्षण संस्थान, सेक्टर-7, आर. के. पुरम, नयी दिल्ली-22

Ch-3.indd 61 5/20/2014 9:54:57 AM

सभी सभ्यताओं और संस्कृतियों ने शिक्षा की सामाजिक और सांस्कृतिक महत्ता को स्वीकार किया है। भारतीय संस्कृति में भी प्राचीन काल से ही शिक्षा को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। भारतीय विचारकों ने सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन में शिक्षा की भूमिका और महत्ता पहचानते हुए उसे वह मूल उद्‌गम माना है जहाँ से परिवर्तन के रास्ते खुलते हैं। पाश्चात्य सभ्यताओं के मनीषियों ने भी वृहत्तर सामाजिक परिवर्तन की भूमिका के रूप में शिक्षा को चिह्नित किया है और शिक्षा से स्वतंत्र और पूर्णतर मनुष्य बनने की बात कही है। बहुत-से शिक्षा दार्शनिकों का मानना है कि शिक्षा समाज में अन्यायपूर्ण एवं अनैतिक संरचनाओं को समाप्त करने और आर्थिक रूप से पिछड़े तबकों को वैयक्तिक और सामाजिक मुक्ति के लिए बौद्धिक चिंतन और कौशलों से युक्त करती है। ये सभी ऐसे तर्क हैं जो स्कूली शिक्षा को वैधता प्रदान करते हैं। यदि स्कूली शिक्षा के इतिहास पर नज़र डालें तो यह स्पष्ट होता है कि स्कूली शिक्षा ने एक हद तक अवसरों की समानता प्रदान करने, सामाजिक गतिशीलता और परिवर्तन को संभव बनाने में मदद की है। परंतु प्रश्न यह है कि क्या स्कूली शिक्षा समाज के हर वर्ग के हर बच्चे तक पहुँच पाई है? विशेषकर भिन्न रूप से सक्षम बच्चों के संदर्भ में यह सवाल और भी महत्वपूर्ण हो जाता है।

क्या विद्यालयी शिक्षा व्यवस्था विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शारीरिक, संवेदनात्मक एवं बौद्धिक ज़रूरतों का ध्यान रख पाने में सक्षम हो पाई है? इस सवाल का उत्तर परिवर्तन के उन सभी दौरों में निहित है जिनसे होकर स्कूली शिक्षा व्यवस्था गुज़री है। विशेष आवश्यकता वाले चुनौतीपूर्ण बच्चों की शिक्षा के संदर्भ में भारत में लागू प्रावधानों की प्रवृत्ति यह दर्शाती है कि 1970 से पहले प्रमुख नीतियों का झुकाव 'पृथक्करण' या अलग किए जाने की ओर था। अनेक प्रशिक्षकों का विश्वास था कि शारीरिक, भावात्मक, बौद्धिक रूप से चुनौतीपूर्ण बच्चे इतने अलग थे कि वे एक सामान्य स्कूल की गतिविधियों में भाग नहीं ले सकते थे। इससे पहले मिशनरियों द्वारा 1880 के दशक में दया की भावना के आधार पर इन बच्चों के लिए पृथक् रूप से विद्यालय खोले गए थे। समाजशास्त्रियों द्वारा विभेदीकरण/अलगाव की नीतियों की आलोचना हुई संकेत किया गया कि "विशेष शिक्षा व्यवस्था सामाजिक अलगाव और विकलांगों के सामाजिक रूप से अकेले पड़ जाने की ओर ले जा रही है, यह उनके आगे की पूरी जिंदगी के लिए अलग दुनिया बना रही है।" 1970 के दशक में संघ सरकार द्वारा नियमित विद्यालयों में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराने हेतु आई.ई.डी.सी. योजना शुरू की गई यह योजना इन बच्चों की सामाजिक ज़रूरतों के प्रत्युत्तर में अवश्य थी परंतु आँकड़े दर्शाते हैं कि विशेष आवश्यकता प्राप्त बच्चों तक पहुँच अपर्याप्त ही रही। ज़रूरत इस बात की है कि इन सभी बच्चों की सभी तरह के शैक्षणिक अवसरों तक पूरी पहुँच हो।

1990 के दशक में सलमांका में हुई विश्व कांफ्रेंस के बाद 'इंक्ल्यूसन' सभी बच्चों की शिक्षा के लिए प्रभावशाली नीति के रूप में उभरा। आज के समय की माँग यह है कि एक लचीली, व्यापक और संतुलित पाठ्यचर्या बने जो सभी बच्चों की आवश्यकताओं को पूरा कर सके। एक इंक्ल्यूसिव पाठ्यचर्या ऐसे स्कूलों की आवश्यकता को मान्यता देती है जो विद्यार्थियों के वैयक्तिक अंतरों को ध्यान में रखती हो और इतनी लचीली हो कि विद्यार्थी अपने लक्ष्यों को पाने में समर्थ हो सकें। शिक्षाशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों के प्रयास यही हैं कि इंक्ल्यूसिव पाठ्यचर्या के क्रियान्वयन हेतु किसी तरह की कमी न रह जाए और बच्चों में स्वावलंबन एवं स्वतंत्र जीवन कौशल विकसित किए जाएँ।

वर्तमान स्थिति यह है कि जहाँ एक ओर सभी विद्यालयों को 'इंक्ल्यूसिव' बनाने पर ज़ोर दिया जा रहा है तो दूसरी ओर 'विशेष स्कूल' भी विशेष ज़रूरतों वाले चुनौतीपूर्ण बच्चों की शिक्षा संबंधी ज़रूरतों को पूरा कर रहे हैं। बहुत-से बच्चे यहाँ दाखिला लेते हैं और विशेष सुविधाओं का लाभ उठाते हैं। ये विद्यालय जिन्हें खास संदर्भों में 'विशेष' या 'स्पेशल' स्कूल कहा जाता है, विकलांगता के आधार पर बच्चों की शारीरिक और मानसिक ज़रूरतों को ध्यान में रखते हुए कुछ विशेष प्रावधान जुटाते हैं, जैसे–

- विशेष प्रकार की ढाँचागत सुविधाएँ जो विकलांगता के प्रकार के अनुसार बच्चों की ज़रूरतों को पूरा करती हैं, जैसे– दृष्टिबाधित विद्यालयों की सुविधाएँ।
- ज़रूरतों के आधार पर विशेष रूप से प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षक जैसे– मूक-बधिर बच्चों के लिए अलग से शिक्षक।
- विशेष प्रकार के उपकरण जो विकलांगता को ध्यान में रखते हुए बच्चों को विशेष सुविधा देते हों, जैसे– ब्रेल लिपि में पुस्तकें, सॉफ्टवेयर जॉब आदि।
- अलग तरह की शिक्षण पद्धतियाँ जैसे– संकेत भाषा का प्रयोग।
- विशेष रूप से तैयार की गई शिक्षण सामग्री, जैसे–उभरे हुए नक्शे, ऑडियो पुस्तकें आदि।
- ज़रूरतों को ध्यान में रखते हुए खेल एवं मनोरंजन के उपकरण।
- आवश्यकता के आधार पर पाठ्यपुस्तकें, जैसे–ब्रेल में।

विद्यालयी शिक्षा के स्तर तक तो इस प्रकार की सुविधाओं वाले विद्यालय मौजूद हैं और बच्चों के प्रति 'रक्षात्मक' रुख अपनाते हुए उन्हें औपचारिक शिक्षा सुलभ करवाते हैं। परंतु उच्च शिक्षा एवं व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के लिए बच्चे 'नियमित संस्थाओं'/'नियमित शिक्षण संस्थाओं' में प्रवेश लेते हैं। संभवतया उनके पास और कोई विकल्प न हो क्योंकि उच्च शिक्षा के लिए और व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए 'विशेष महाविद्यालयों' या फिर 'विशेष प्रशिक्षण संस्थाओं' की संख्या नगण्य ही है। एक अवधि विशेष अर्थात् एक स्तर विशेष जैसे माध्यमिक अथवा उच्चतर माध्यमिक स्तर तक विशेष विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने के बाद सामान्य या नियमित संस्था में प्रवेश लेना क्या

उतना ही आसान है जितना कि पढ़ने-जानने में सरल प्रतीत हो रहा है। यहाँ आकर विद्यार्थी किस प्रकार से समायोजन स्थापित कर पाते हैं, यह सामाजिक, शैक्षिक ही नहीं अपितु नीतिपरक विषय का मुद्दा है। प्रस्तुत शोध अध्ययन बच्चों के ऐसे अनुभवों और अनुभवों के आधार पर उपजे शैक्षिक निहितार्थों पर प्रकाश डालता है जो एक स्तर की शिक्षा विशेष स्कूलों में पूरी करने के दौरान अर्जित किए गए हैं और माध्यमिक या व्यावसायिक शिक्षा के लिए नियमित संस्थाओं में प्राप्त किए गए हैं।

समस्या कथन

भिन्न रूप से सक्षम बच्चों का विशेष विद्यालय से नियमित विद्यालयों/शैक्षिक संस्थाओं में परागमन (ट्राँजिशन) : एक अध्ययन।

उपर्युक्त कथन के आधार पर कुछ शोध प्रश्न उभरते हैं जो इस प्रकार हैं–

- विशेष विद्यालयों से नियमित विद्यालयों/संस्थाओं में परागमन के मुख्य कारण क्या रहे होंगे या हो सकते हैं?
- परागमन की ओर अभिमुख विद्यार्थियों की औसत संख्या क्या है ?
- विद्यार्थी विशेष सुविधा सुलभ परिवेश से यकायक सुविधावंचित वातावरण में शारीरिक रूप से किस प्रकार समायोजन स्थापित कर पाते हैं?
- दोनों स्थितियों में से भावात्मक समायोजन किस स्थिति विशेष में तुलनात्मक रूप से बेहतर है?
- विद्यार्थी व्यावहारिक रूप से किस प्रकार भिन्न हैं और उनके व्यवहार में भिन्नता के क्या कारण हो सकते हैं?

प्रस्तुत अध्ययन इन शोध प्रश्नों की खोज-पड़ताल करता है।

समस्या कथन में प्रयुक्त शब्दावली का स्पष्टीकरण

- **भिन्न रूप से सक्षम बच्चे** – वे बच्चे जिनमें जन्म के समय से ही अथवा जन्म के बाद किसी प्रकार का शारीरिक या मानसिक स्तर से अलगाव पाया गया हो। सामान्य प्रचलन की भाषा में 'अलगाव' शब्द 'विकृति' या 'दोष' की ओर संकेत करता है। जैसे– श्रवण दोष, दृष्टि दोष आदि। समय-समय पर इस तरह के बच्चों के लिए अलग-अलग शब्दावली प्रयुक्त की गई जैसे– अपंग बच्चे (नेत्रहीन, मूक-बधिर आदि), विशेष आवश्यकता वाले बच्चे, चुनौतीपूर्ण बच्चे और अब भिन्न रूप से सक्षम बच्चे।
- **विशेष विद्यालय** – चुनौतीपूर्ण बच्चों की ज़रूरतों को ध्यान में रखते हुए अर्थात विकलांगता के आधार पर खोले गए विद्यालय। इस तरह के विद्यालयों की शुरूआत 1880 के दशक में इसाई मिशनरियों द्वारा दया के आधार पर की गई थी। नेत्रहीन लोगों के लिए 1887 में पहला स्कूल खुला, मूक-बधिर लोगों के लिए पहली संस्था की स्थापना 1988 में हुई। मंदबुद्धि लोगों के लिए पहला स्कूल

1934 में खुला। शारीरिक एवं मानसिक विकलांगता के आधार पर इन विद्यालयों में विशेष तरह की सुविधाएँ उपलब्ध रहती हैं।

- **नियमित/सामान्य विद्यालय** – स्तरवार शिक्षा प्रदान करने वाले सामान्य विद्यालय जो किसी विद्यार्थी विशेष की शारीरिक या मानसिक विकलांगता की ज़रूरत के लिए नहीं अपितु सामान्य कहलाने वाले बालकों के लिए बनाए गए हों।
- **परागमन** – परागमन (ट्रॉंज़िशन) से तात्पर्य उस स्थिति से है जब विद्यार्थी एक प्रकार के विद्यालय से दूसरी तरह के विद्यालय में प्रवेश लेते हैं। उदाहरण के तौर पर भारतीय औपचारिक शिक्षा व्यवस्था में तरह-तरह के विद्यालय हैं जो विद्यार्थियों की ज़रूरतों के आधार पर बने हैं, जैसे– दृष्टिबाधितों आदि के लिए विशेष विद्यालय जहाँ विकलांगता के प्रकार के अनुसार सुविधाएँ उपलब्ध की जाती हैं, नियमित विद्यालय जहाँ विकलांगता को ध्यान में रखकर किसी तरह के प्रावधान नहीं होते। बहुत-से ऐसे बच्चे हैं जो दोनों ही प्रकार के विद्यालयों में पढ़ने का अवसर प्राप्त करते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि परिस्थितियों के अनुसार उन्हें विद्यालय बदलना पड़ता है, कभी विशेष विद्यालय तो कभी नियमित विद्यालय। एक प्रकार के विद्यालय से दूसरे प्रकार के विद्यालय में जाना और वहाँ शैक्षिक सुविधाओं के लाभ उठाने, वहाँ बने रहने को 'परागमन' शब्द से संबोधित किया गया है।

अध्ययन हेतु न्यादर्श

अल्पकालिक अवधि वाले इस अध्ययन में मात्र 4 विद्यार्थियों को न्यादर्श के रूप में लिया गया है।

आशीष कुमार - बिहार के बरबीधा गाँव में जन्म हुआ। 5.6.1990 को जन्मे इस बालक में किसी प्रकार की अपंगता न थी। दूसरी कक्षा के बाद आँखों की रोशनी जाना शुरू हुई और तीसरी कक्षा तक आते-आते पूरी तरह से चली गई। गाँव के विद्यालय में ही (प्राइवेट) पढ़ाई आरंभ की। आँखों की रोशनी जाने के बाद मँझले भाई को साथ में बैठा दिया गया। मँझला भाई उसी विद्यालय में पहली श्रेणी में पढ़ता था। स्कूल के हेडमास्टर से निवेदन किया गया कि यदि आशीष का भाई उसकी कक्षा में उसके साथ-साथ रहे तो वह पढ़ने और लिखने तथा अन्य प्रकार की गतिविधियों में आशीष की मदद कर सकता है। अन्य अध्यापकों की ओर से किसी प्रकार की आपत्ति न होने पर आशीष के मँझले भाई को बिना परीक्षा के उसकी कक्षा में प्रवेश दिया गया। आशीष के लिए पढ़ने व लिखने का काम मँझला भाई ही करता था। पिता का आइसक्रीम बनाने का व्यापार है। आर्थिक स्थिति सुदृढ़ थी अत: पटना के किसी अच्छे विद्यालय में प्रवेश के लिए प्रयास किए गए परंतु सभी जगह मना कर दिया गया। अंतत: पटना में 3 महीने रहकर ब्रेल भाषा सीखी और फिर दिल्ली में जनता आदर्श संत विद्यालय सादिक नगर (विशेष स्कूल) में प्रवेश दिलाया गया। यह विद्यालय दसवीं कक्षा तक था। अत: किसी शिक्षक ने नूतन मराठी

उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में प्रवेश लिया। यह एक नियमित विद्यालय है। यहाँ से बारहवीं की परीक्षा उत्तीर्ण की। संप्रति आशीष मं. शि. एवं प्रशिक्षण संस्थान, आर. के. पुरम में ई.टी.ई. का कोर्स कर रहा है।

अनीता कुमारी – पोलियोग्रस्त 22 वर्षीय बालिका जो दिल्ली के उत्तमनगर में रहती है। प्राथमिक स्तर की शिक्षा सामान्य नगर निगम के विद्यालय में हुई। चौथी कक्षा के दौरान अन्य बालकों की तरह पेड़ पर चढ़ने की कोशिश में औंधे मुँह नीचे गिरने से आँखों में गंभीर चोट आई। परिणामस्वरूप नेत्र ज्योति चली गई तत्पश्चात् इंदौर के अंधा विद्यालय में बारहवीं कक्षा तक पढ़ाई की और इसी वर्ष प्रारंभिक अध्यापक शिक्षा का पाठ्यक्रम आर. के. पुरम डायट से पूरा किया है।

सुदेश पाहूजा – दिल्ली के दक्षिण पश्चिम जिले के मसूदपुर क्षेत्र में रहने वाला 24 वर्षीय विद्यार्थी है। सुदेश जन्म से ही दृष्टिबाधित है। जीवन के शुरूआती सात वर्ष तक किसी विद्यालय में प्रवेश नहीं लिया। अभिभावकों द्वारा यह ज़रूरत ही नहीं समझी गई कि इस तरह के बच्चों को भी शिक्षा एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण की ज़रूरत है। जब सुदेश सात वर्ष का था, माँ की किसी दुघर्टना में मृत्यु हो गई अब सुदेश की देख-रेख का संपूर्ण दायित्व पिता एवं अन्य भाई-बहनों पर आ गया जो देख-सुन सकते थे। सुदेश अपने दैनिक कार्यों के लिए भी माँ पर निर्भर था। यह निर्भरता अब पिता व भाई-बहनों पर आ गई जिससे पिता के व्यवसाय (ड्राईक्लीनिंग की दुकान) व भाई-बहनों की स्कूली पढ़ाई में व अन्य गतिविधियों में भार पड़ने लगा। ऐसी स्थिति में सुदेश के पिता ने अपनी इस समस्या की चर्चा लगभग हर परिचित व्यक्ति से की। इस प्रक्रिया में सुदेश के भाई-बहनों की अध्यापिका ने आर. के. पुरम्, सैक्टर-1, नई दिल्ली के विशेष स्कूल के बारे में बताया। सुदेश ने पाँचवीं तक की शिक्षा आर. के. पुरम के विद्यालय तथा दसवीं की पढ़ाई विकासपुरी के विद्यालय से पूरी की। उसके अध्यापकों के अनुसार सुदेश अब आत्मनिर्भर बन चुका था।

सुदेश को भी परिवर्तन की चाहत थी। दो सरकारी विद्यालयों में प्रवेश न मिलने पर एक प्राइवेट विद्यालय वंदना इंटरनेशनल स्कूल में प्रवेश लिया जहाँ से बारहवीं की परीक्षा 56% से उत्तीर्ण की। पिछले वर्ष डायट, मोतीबाग से प्रारंभिक अध्यापक शिक्षा का डिप्लोमा 62% अंकों से उत्तीर्ण किया है।

शशांक – डायट-आर. के. पुरम् का प्रशिक्षणार्थी है। शशांक को अपने जीवन के शुरूआती दौर में बहुत धुँधला दिखाई पड़ता था। वह संगम विहार का रहने वाला है। आस-पास कोई विद्यालय नहीं था फिर भी 3 कि. मी. की दूरी पूरी कर खानपुर, दुग्गल कॉलोनी के सरकारी विद्यालय में पढ़ने आता था। उसे इतना याद है कि श्यामपट्ट पर धुँधला दिखाई देने के कारण वह बार-बार प्रश्न पूछता था। अध्यापिका उसकी इस आदत से परेशान थी। वह खीझकर शशांक की पिटाई भी कर देती थी। कई बार शशांक आते-जाते अपने अध्यापकों व साथियों से टकरा जाता था।

सभी यह सोचते, विशेषकर अध्यापक कि यह जानबूझकर टकरा जाता है। अत: वह इस बात पर भी डाँट खाता। रोशनी इतनी कम थी कि वह आँखें पुस्तक से सटाकर पढ़ता था। कॉपियों पर खिंची लकीरें उसे स्पष्ट रूप से दिखती नहीं थीं, इसलिए लिखाई टेढ़ी-मेढ़ी हो जाती, यह भी शशांक के पिटने का कारण होता। उसे एक उपद्रवी व नालायक किस्म का बच्चा समझा जाता और किसी भी सांस्कृतिक कार्यक्रम में शामिल नहीं किया जाता। ये सभी कारण शशांक का स्कूल छुड़वाने के लिए पर्याप्त थे।

स्कूल छोड़ने के बाद शंशाक का अधिक समय दोस्तों के साथ खेलने में बीतता। खेल के साथियों ने ही इस बात का खुलासा किया कि शंशाक को अच्छी तरह से दिखता नहीं है। दोस्तों के कहने पर ही शंशाक के नेत्रों की जाँच करवाई गई तो पाया गया कि उसके नेत्रों की रोशनी इतनी कम है कि सामने वाले व्यक्ति उसे मात्र छाया ही दिखाई पड़ते हैं। अब तक वह सभी को अपनी आवाजों व कपड़ों की खुशबू (ऐसा वह कहता है) के आधार पर पहचानता था। इलाज की संभावनाएँ न के बराबर थीं। उसे बताया गया कि आँख के अंदर जो चार नसें हैं उनमें से दो में रक्त प्रवाह बिल्कुल नहीं है। डॉक्टर ने ही सादिक नगर के जनता आदर्श संत विद्यालय में प्रवेश दिलवाया जहाँ से शशांक ने दसवीं की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। तब तक संगम विहार में भी उच्चतर माध्यमिक स्तर का सरकारी विद्यालय खुल गया था। चूँकि शशांक के साथी वहीं जाने लगे थे, अत: उन्होंने उसे वहाँ दाखिला लेने के लिए प्रोत्साहित किया। उन्हें इस बात का पता नहीं था कि दृष्टिबाधित बच्चे भी अब सामान्य/नियमित विद्यालयों में प्रवेश पा सकते हैं। इसलिए वे प्रधानाचार्य से शशांक के दृष्टिबाधित होने की बात छिपा रहे थे। वे भूल गए थे कि उसे दसवीं का प्रमाणपत्र विशेष स्कूल से मिला हुआ है। प्रमाण-पत्रों से पता चल ही गया कि शशांक देख नहीं सकता, तमाम नाटक करने के बाद भी। पर यहाँ उन्हें निराश नहीं होना पड़ा और ग्यारहवीं कक्षा में प्रवेश मिल गया। शंशाक ने 58% अंकों से बारहवीं की परीक्षा उत्तीर्ण की और अध्यापक प्रशिक्षण संस्थान में प्रवेश लिया। यह उसका दूसरा वर्ष है।

समग्र न्यादर्श पर एक नज़र

तालिका - 1

क्रम संख्या	नाम	आयु	विकलांगता का प्रकार	कब से	प्राथमिक	माध्यमिक	उच्चतर माध्यमिक	उच्च शिक्षा
1.	आशीष	21 वर्ष	दृष्टिबाधित	8 वर्ष की आयु के बाद	सामान्य विद्यालय	विशेष विद्यालय	नियमित विद्यालय	नियमित मं. शि. एवं प्र. संस्थान

2.	अनीता कुमारी	22 वर्ष	पोलियो, दृष्टिबाधित	9 वर्ष की आयु में	सामान्य तथा नियमित विद्यालय	विशेष विद्यालय	विशेष विद्यालय	नियमित मं. शि. एवं प्र. संस्थान
3.	सुदेश पाहूजा	24 वर्ष	दृष्टिबाधित	जन्म से	विशेष विद्यालय	विशेष विद्यालय	सामान्य तथा नियमित विद्यालय	नियमित मं. शि. एवं प्र. संस्थान
4.	शशांक	22 वर्ष	दृष्टिबाधित	6–7 वर्ष के बाद	सामान्य विद्यालय	विशेष विद्यालय	नियमित विद्यालय	नियमित मं. शि. एवं प्र. संस्थान

उपर्युक्त तालिका न्यादर्श के अंतर्गत लिए गए विद्यार्थियों की विकलांगता के प्रकार और स्तरवार शैक्षिक उपलब्धियों में परागमन की स्थिति को दर्शाती है।

शोधकार्य पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन की कार्य शैली के प्रमुख सोपानों को निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है–

- शोध कथन से संबद्ध संकल्पना के स्पष्टीकरण व स्पष्ट अवबोधन हेतु समावेशी शिक्षा से जुड़ी पुस्तकों, पत्रों का अध्ययन;
- पूर्व में किए गए शोध कार्यों का अध्ययन;
- शोधकार्य के लिए न्यादर्श का चयन जिनसे प्रस्तुत विषय के अध्ययन के लिए आधार प्राप्त हुए;
- शोधकार्य से जुड़े तथ्यों का गहन अवलोकन एवं चर्चा

अवलोकन विधि – अवलोकन दत्त संग्रह की अति स्वाभाविक विधि है। इस विधि के द्वारा न्यादर्श के प्रत्यक्ष व्यवहार एवं कार्य प्रणालियों का अवलोकन कर उसके आधार पर निष्कर्ष निकाले गए।

वैयक्तिक अध्ययन – वैयक्तिक अध्ययन किसी व्यक्ति/संस्था/घटना विशेष के बारे में समग्र रूप से विवरण प्राप्त करने का अति प्राचीन और वैज्ञानिक तरीका है। वैयक्तिक अध्ययन के लिए शोध की किसी एक पद्धति पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। इसके लिए न्यादर्श की गतिविधियों का अवलोकन, औपचारिक एवं अनौपचारिक रूप से संवाद और उसके संबंध में आने वाले व्यक्तियों से बातचीत शामिल है। प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत चारों विद्यार्थियों का वैयक्तिक अध्ययन किया गया।

उपकरण – प्रस्तुत अध्ययन की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए आवश्यक तथ्यों एवं सूचनाओं का संकलन स्वनिर्मित प्रश्नावली एवं चैकलिस्ट के द्वारा किया गया। प्रश्नावली के माध्यम से विद्यार्थी की सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि, शैक्षिक उपलब्धियों एवं विद्यालयी जीवन के बारे में समझ विकसित की गई चेकलिस्ट के ज़रिए विद्यालयों में मिलने वाली सुविधाओं के बारे में सूचनाओं का संकलन किया गया।

प्रदत्त प्रदर्शन एवं विश्लेषण

अध्ययन द्वारा प्राप्त सूचनाओं एवं तथ्यों के प्रदर्शन एवं विश्लेषण से पहले यह आवश्यक है कि उद्देश्यों का पुनरावलोकन किया जाए संक्षेप में, अध्ययन के उद्देश्य इस प्रकार हैं:

- भिन्न रूप से सक्षम विद्यार्थियों की विभिन्न संदर्भों में ज़रूरतों के प्रति समझ पैदा करना;
- इन ज़रूरतों को पूरा करने के संबंध में इन विद्यार्थियों के भिन्न-भिन्न विद्यालयी परिस्थितियों से उपजे अनुभवों को जानना;
- नियमित एवं विशेष विद्यालयों के अंतरों को भिन्न रूप से सक्षम विद्यार्थियों के परिप्रेक्ष्य से चिह्नित करना;
- प्रत्येक विद्यार्थी की आवश्यकताओं को मद्देनज़र रखते हुए नियमित विद्यालयों में समावेशी माहौल तैयार करने की आवश्यकता समझते हुए उन बिंदुओं की पहचान करना जो समावेशी परिवेश तैयार करने में मदद करते हैं।

उपर्युक्त उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में संग्रहीत सूचनाओं एवं तथ्यों को निम्नलिखित रूप से प्रदर्शित एवं विश्लेषित किया गया है:

1. भौतिक एवं बुनियादी संरचना से जुड़े संदर्भ,
2. शिक्षणशास्त्रीय संदर्भ,
3. सामाजिक, भावनात्मक एवं संवेदनात्मक संदर्भ

भौतिक एवं बुनियादी संरचना से जुड़े संदर्भ

किसी भी कार्य विशेष को करने के लिए एक निश्चित प्रकार के परिवेश की आवश्यकता होती है। यूँ तो कोई भी कार्य कहीं भी किया जा सकता है परंतु गुणवत्तापरक परिणामों के लिए उस कार्य विशेष की प्रकृति के अनुसार परिवेश होना आवश्यक है। भिन्न रूप से सक्षम बच्चों के संदर्भ में अनुकूलित परिवेश की उपादेयता और भी अधिक बढ़ जाती है जिससे उन्हें अवरोधमुक्त माहौल मिले और गतिविधियों के संचालन में बुनियादी संरचना किसी प्रकार का अवरोध न बने। विद्यालयी शिक्षा के संदर्भ में भौतिक संदर्भ विद्यालय की इमारत, मुख्य दरवाज़ा एवं अन्य दरवाज़ों की स्थिति, कक्षा की स्थिति एवं माहौल, फर्नीचर का प्रकार, उसे रखने की प्रबंधन व्यवस्था, पेयजल का स्थान, शौचालय की स्थिति एवं बनावट, खेलने-कूदने का मैदान, प्रकाश आदि की व्यवस्था की ओर संकेत करते हैं। भौतिक परिवेश वह पहला बिंदु है जो यह संकेत देता है कि कार्यकलापों का संचालन सहजता से होगा या नहीं। अध्ययन के अंतर्गत लिए गए चारों विद्यार्थियों का यह मानना है कि भौतिक संदर्भों में विशेष विद्यालय

पूरी तरह से किसी भी विशेष आवश्यकता वाले बच्चे का स्वागत करने के लिए तैयार हैं। वहाँ रैंप की सुविधाएँ, कक्षाएँ दूसरी मंज़िल पर न होकर भू-तल पर ही हैं। पेय जल, शौचालय व भोजन कक्ष की स्थिति ऐसी है कि एक बार किसी के द्वारा ले जाए जाने के बाद स्वयं को तथा दूसरे किसी को क्षति पहुँचाए बिना स्वयं जाया जा सकता है। खेलने के लिए भी विशेष तरह के उपकरण हैं। कक्षाओं में बैठने की स्थिति इस तरह की है कि न तो किसी दूसरे को अवरोध उत्पन्न होता है, न स्वयं को। प्रतिदिन के लिए बैठने का स्थान नियत है और सुरक्षात्मक भी है।

चारों विद्यार्थियों के अनुसार नियमित विद्यालयों की स्थिति इससे भिन्न है। मुख्य दरवाज़ों पर ही तीन अलग-अलग तरह के अवरोधक हैं जैसे– नीचे से उठी हुई जमीन, बड़े गेट में छोटा गेट, निकले हुए कुंडे फिर बिना किसी रेलिंग के लम्बा गलियारा जिसकी भूमि कहीं से उठी हुई है, कहीं से फर्श धँसा हुआ है। इसी तरह से बरामदे का फर्श भी कहीं-कहीं, चार फुट ऊँचा है तो कहीं जाकर नीचा हो जाता है जो अक्सर गिरने का कारण बनता है। शौचालय जाने के लिए सभी कक्षाएँ पार कर पूरा मैदान पार करना पड़ता है और मैदान भी खुला सपाट व समतल नहीं है। बीच में क्यारियाँ, गमले, पेड़-पौधे जो सजावट के लिए रखे गए हैं वे कई बार शारीरिक चोट पहुँचा चुके हैं। कक्षाओं में फर्नीचर की स्थिति में चार में से तीन विद्यार्थियों को फर्नीचर के संबंध में बहुत ही असुविधा हुई क्योंकि फर्नीचर अपनी जगह पर निश्चित (फिक्सड) है जिससे इधर-उधर मुड़कर बैठने में कठिनाई होती है। जबकि विशेष विद्यालयों की कक्षाओं में रखी गई कुर्सियाँ इधर-उधर की जा सकती हैं।

खेलने के मैदान में जिस तरह से झूलों की स्थिति है वह भी चोट का भय उत्पन्न करती है। कक्षाओं में बस्ता या अन्य प्रकार की व्यक्तिगत सामग्री रखने की पर्याप्त सुविधा नहीं है। कमरों में खिड़कियाँ इतनी ऊँचाई पर हैं कि उनकी दिशा व स्थिति पता होने पर भी आवश्यकतानुसार स्वयं खोला या बंद नहीं किया जा सकता और इसके लिए अपने साथियों पर निर्भर रहना पड़ता है।

उपर्युक्त प्रदर्शन से स्पष्ट होता है कि नियमित विद्यालयों की ढाँचागत सुविधाएँ समावेशन के लिए तैयार नहीं हैं। सभी बच्चों को अवरोधमुक्त परिवेश देना पहली शर्त है अतः इस दिशा में प्रयास आरंभ कर देने चाहिए, जैसे– मुख्य दरवाजे की स्थिति में सुधार, रैंप बनवाना, फर्श का समतल होना व दो तलों में किसी प्रकार का ध्वन्यात्मक संकेतक लगवाना। बैठने की व्यवस्था को भी नए सिरे से देखना होगा।

शिक्षणशास्त्रीय संदर्भ – शिक्षणशास्त्रीय संदर्भों को निम्नलिखित घटकों से चिह्नित किया गया है:

- विद्यार्थी की अद्वितीयता को पहचानते हुए उसके आत्मसम्मान की रक्षा और महत्त्व,
- कक्षा प्रबंधन की प्रणाली,
- अनुशासन की अवधारणा और व्याख्या एवं तरीके,

- पाठ्यचर्यक विषय एवं कौशल आधारित शिक्षण,
- अनुभव देने की पद्धतियाँ,
- शिक्षण सामग्री व पाठ्यपुस्तकें
- आकलन से जुड़े मुद्दे,
- गृहकार्य एवं प्रोजेक्ट कार्य,

शिक्षणशास्त्रीय संदर्भों का प्रदर्शन एक मिला-जुला स्वरूप प्रस्तुत करता है। पहले उपागम में स्थिति स्पष्ट थी कि बुनियादी संरचना के संबंध में नियमित विद्यालय विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों की ज़रूरतों को पूरा कर पाने में असमर्थ हैं परंतु शिक्षणशास्त्रीय नज़रिए से देखा जाए तो संग्रहीत सूचनाएँ प्रदर्शित करती हैं कि किन्हीं स्थितियों में उनकी ज़रूरतों का ध्यान रखा जाता है और कहीं-कहीं वे असुविधाओं का सामना करते हैं, जैसे –

कक्षा प्रबंधन – समय-तालिका बनाते समय उनकी ज़रूरतों का पूरा ध्यान रखा जाता है, किस विषय में उन्हें अतिरिक्त समय चाहिए, किस गतिविधि को वे अकेले कर सकते हैं, उन्हें किस समूह में करना ठीक होगा, उनके लिए अलग से कुर्सी कब और कहाँ डाली जाए, उनके बस्तों को कौन कहाँ रखेगा और ज़रूरत पड़ने पर कैसे उपलब्ध करवाया जाएगा, इन सब बातों का बहुत ही सहजता से प्रबंधन किया जाता है। कहीं से भी आभास नहीं होने दिया जाता कि हमारे लिए कुछ विशेष किया जा रहा है अर्थात् बहुत ही गरिमापूर्ण तरीके से हमारी उपस्थिति को स्वीकार किया जाता है।

अनुशासन की अवधारणा एवं व्याख्या– चारों विद्यार्थियों के अनुभव बताते हैं कि विद्यालयी अनुशासन की अवधारणा के संदर्भ में तुलनात्मक रूप से उन्हें नियमित विद्यालयों में अच्छा लगा। सामान्यत: विशेष विद्यालयों में उनके लिए सभी कुछ, यथा – बैठने का स्थान, खाने का समय, सहपाठियों से अनौपचारिक बातचीत का समय, मनोरंजन का समय पहले से ही नियत होता है जिससे एकरसता पैदा हो गई थी, एक विद्यार्थी द्वारा क्रम तोड़ने पर डाँट आदि की जगह यही कहा जाता था कि, "बाकी सब भी तुम्हारे जैसे हैं, वे कर सकते हैं तो तुम्हें क्या समस्या है?" या फिर कभी-कभी तो यह भी कहा जाता था कि "मरे को क्या मारना" इस तरह से ठेस पहुँचाई जाती थी परंतु नियमित विद्यालयों में यदि पूरी कक्षा को खड़ा होना होता तो उसमें ये विद्यार्थी भी शामिल हैं, जो इन्हें अच्छा लगता था। एक विद्यार्थी ने अपने अनुभव में बताया कि, "दीपावली के समय हमारी कक्षा के बच्चों ने चोरी-छिपे विद्यालय में पटाखे चलाए। पता चलने पर पूरी कक्षा को सज़ा मिली, मुझे छोड़कर। प्रधानाचार्या ने कहा कि इसे क्या कहना यह तो देख ही नहीं सकता। पर जब कक्षाध्यापिका ने कहा कि, "नहीं मैम, इसे भी सज़ा मिलनी चाहिए, यह भी तो कक्षा का हिस्सा है।" तो मुझे बहुत अच्छा लगा और ईमानदारी व गर्व के साथ सज़ा में हिस्सा लिया।"

विद्यालय में आने-जाने के समय, भोजन-अवकाश, छुट्टी प्रदत्त कार्यों को नियत समय पर देने आदि के संदर्भ में तुलनात्मक रूप से नियमित विद्यालय बेहतर लगे।

अनुभव देने की पद्धतियाँ – इस बिंदु में पढ़ने-पढ़ाने के तरीके शामिल किए गए हैं।

विद्यार्थियों का कहना है कि यद्यपि उनके अध्यापक कक्षा में उनके सीखने-सिखाने के तरीकों का ध्यान रखते थे परंतु विशेष विद्यालयों के अध्यापकों की तुलना में हमारी ज़रूरतों के अनुसार शिक्षण नहीं कर पाते थे। विशेष विद्यालयों के अध्यापक विशेष प्रकार की तकनीकें जानते थे जैसे – ब्रेल पढ़ पाना, विशेष प्रकार के भाषिक व अभाषिक संकेत देना, समूह में कार्य करवाना। परंतु नियमित विद्यालयों के अध्यापक इस संदर्भ में मात्र सामान्य बच्चों के अनुसार ही शिक्षण विधियों का उपयोग करते थे। जैसे– "फटाफट अमुक पुस्तक निकालो, देखो उस पर पृष्ठ संख्या अमुक, अच्छा अब फटाफट पन्ना पलटो, इस चित्र को ध्यान से देखो, समझ में आया या नहीं। देखो, श्यामपट्ट पर जो बिंदु लिख रही हूँ इन्हें कापी में उतार लो।" आदि।

चारों विद्यार्थियों का मानना है कि इस तरह का व्यवहार वे आदतन करते थे और भूल जाते थे कि चुनौतीपूर्ण बच्चे भी उनकी कक्षा में मौजूद हैं। विशेष रूप से याद दिलाने पर वे अपनी शिक्षण पद्धति में बदलाव लाने का प्रयास अवश्य करते थे। प्रदर्शन से स्पष्ट है कि नियमित विद्यालयों के अध्यापकों को शिक्षण पद्धतियों में विविधता वाली स्थितियों के अनुसार प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है।

शिक्षण सामग्री व पाठ्यपुस्तकें – चार विद्यार्थियों में से एक विद्यार्थी को छोड़कर शेष तीन के अनुसार नियमित विद्यालयों में तुलनात्मक रूप से शिक्षण सामग्री का अभाव तो है ही और जो हैं भी वे उनकी ज़रूरतों को पूरा नहीं करतीं जैसे – विशेष विद्यालयों में पाठ्यपुस्तकें ब्रेल में मिलती थीं, वहाँ पर एक पत्रिका भी ब्रेल में आती थी, उभरे हुए नक्शे, थ्री डायमेंशनल मॉडल हुआ करते थे। कुछ पुस्तकों की रिकॉर्डिंग भी उपलब्ध थी।

नियमित विद्यालयों में इस प्रकार की सुविधाएँ नहीं थीं। अत: व्यक्तिगत प्रयास करके यह सब जुटाया गया पर तब तक काफी कुछ पढ़ाया जा चुका था। यद्यपि अध्यापकों ने पुन: पढ़ाने में मदद की परंतु पूरी कक्षा के साथ चलना अधिक रोचक लगा। पाठ्यचर्यक विषय के संदर्भ में जानकारी दी गई कि गणित में ज्यामितीय भाग भी अनिवार्य था परंतु निवेदन करने पर उससे संबंधित सवालों का रूप बदला गया। उस विषय में उन्हें बहुत कठिनाई हुई और उनके अंक भी बहुत कम आए। जहाँ-जहाँ 'डायग्राम' उत्तर देने का मुख्य आधार होते थे, वहाँ उन्हें कम अंक प्राप्त हुए। प्रस्तुत प्रदर्शन प्रत्यक्ष रूप से पाठ्यचर्यक निरूपण (करीकुलर अडैप्टेशन) की ओर संकेत करता है।

आकलन से जुड़े मुद्दे, गृहकार्य आदि – चारों विद्यार्थियों से प्राप्त सूचनाएँ प्रदर्शित करती हैं कि तुलनात्मक रूप से नियमित विद्यालयों में चल रही आकलन की प्रक्रिया निरंकुश प्रतीत हुई यद्यपि यहाँ उन्हें अच्छा लगता था कि उन्हें अपने से अलग और तुलनात्मक रूप से अधिक सक्षम बच्चों से प्रतिस्पर्धा करनी है परंतु बहुत-सी

अभावजन्य स्थितियों के कारण उत्साह क्षीण हो जाता था, जैसे–

- प्रश्न-पत्रों पर निर्भरता अधिक थी, प्रश्नपत्र ब्रेल में उपलब्ध नहीं हुए न ही 'रिकॉर्डेड' रूप में मिले।
- 'लिखने वाले' के लिए अनुमति प्राप्त करना, उसकी खोज करना एक जटिल प्रक्रिया लगी। विशेष विद्यालयों में इस तरह के प्रावधान प्रशासन की ओर से ही जुटाए जाते थे।
- कुछ प्रश्न ऐसे पूछ लिए जाते थे जो पूर्व अनुभवों पर आधारित नहीं थे जैसे– "अपने घर से विद्यालय आते हुए रास्ते में जो-जो देखा, उसका वर्णन करते हुए अपने मित्र को पत्र लिखो।"
- परीक्षा की तैयारी के संदर्भ में अतिरिक्त समय देने का प्रावधान कभी नहीं मिला। चारों विद्यार्थी इस बारे में सहज नहीं थे। मूल्याँकन से जुड़ी घटना बताते हुए, "मुझे वार्षिक परीक्षा हेतु प्रवेश पत्र दिया गया। मैंने केंद्र व समय के बारे में पूछा। कहा गया जो सबका है वही तुम्हारा है।" मैंने समझा कि जो पहले वर्ष था वही अब होगा। इसी समझ के साथ मैं केंद्र पर पहुँचा। पर परीक्षा हो चुकी थी। क्योंकि इस बार परीक्षा का समय शाम को नहीं सुबह था। यदि मुझे ब्रेल में प्रवेश पत्र मिलता या पढ़कर बताया जाता तो मैं परीक्षा से वंचित न रह जाता। मेरी 'री -एपीयर' आई तो मुझे बहुत शर्म आई अपने-आप पर।
- इस तरह से दूसरे विद्यार्थी ने बताया कि 'चौथे पेपर वाले दिन मैं अपने परीक्षा केंद्र के नज़दीक एक गड्ढे में गिर गया, केंद्र में पहुँचने तक पेपर शुरू हो चुका था, समय अतिरिक्त सिर्फ उतना ही मिला जितना पहले से मिलना निर्धारित था। मेरी कुहनियाँ छिली हुई थीं, लिख नहीं पा रहा था। परिणाम यह हुआ कि उस विषय में मैं फेल हो गया, यहाँ पर मेरी क्या गलती थी?"

प्रस्तुत अभिव्यक्तियाँ निश्चित रूप से पुनः अवलोकन की माँग करती हैं।

सामाजिक, भावनात्मक एवं संवेदनात्मक संदर्भ – चारों विद्यार्थियों ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि नियमित विद्यालयों में तुलनात्मक रूप से अनेक कमियाँ थीं परंतु भावात्मक स्तर पर उन्हें नियमित विद्यालयों में ही अच्छा लगा। मानवीय गरिमा की अनुभूति उन्हें नियमित विद्यालयों में हुई इस संबंध में उनके तथ्य थे:

- सभी बच्चे हमारे जैसे नहीं थे, वे तुलनात्मक रूप से अधिक सक्षम थे, उनके साथ पढ़ना अधिक चुनौतीपूर्ण लगा। विशेष विद्यालयों में सभी नेत्रहीन थे। अतः कुछ भी करना विशेष अर्थ नहीं रखता था।
- जहाँ सभी बच्चे जाते हैं, मैं भी वहीं जाता हूँ और वह सब कुछ करता हूँ जो वे सब करते हैं, यह सोचकर मेरा अपने प्रति सम्मान बढ़ता गया जबकि विशेष विद्यालय में विशेष सुविधा होने पर भी मैंने स्वयं को महत्वपूर्ण नहीं माना।

- विद्यार्थियों द्वारा विशेष व्यवहार न करके सामान्य व्यवहार करना भावात्मक रूप से बहुत अच्छा लगा। "अपने आपको एलियन या अंधा न मानकर उन्हीं जैसा माना। जब सहपाठी अपने साथ खो-खो, पिट्ठू, विषमृत खिलाते थे। वे जैसा दूसरों से कहते थे, वैसा ही मुझसे भी कहते थे, "ओ अनीता दौड़, देख पिट्ठू पीटना है, जल्दी ला ना बॉल।"..... सभी बच्चों की तरह मुझे भी डेन देनी पड़ती थी। मेरा दिल खुशी से भर जाता था। पर विशेष स्कूल में डेन देना कभी अच्छा नहीं लगा। सभी मेरे जैसे ही तो थे वहाँ पर।" ..... जब क्रमांक के अनुसार औरों की तरह कमांड देने, श्यामपट्ट साफ करने की मेरी बारी आती, मुझे बहुत मज़ा आता था। ज़रूरत पड़ने पर साथी अपने-आप आगे आते और सहज भाव से मदद करते, बिना यह जताए कि मैं देख नहीं सकती। कई बार मैंने भी उन बच्चों को उत्तर लिखवाने में मदद की।"

उपर्युक्त तथ्य एवं टिप्पणियाँ स्पष्ट करते हैं कि बच्चे चाहें वे चुनौतीपूर्ण हैं अथवा नहीं वे सभी एक साथ खेलना, पढ़ना, सीखना पसंद करते हैं। विशेष आवश्यकता वाले बच्चे विशेष प्रकार की सुविधाओं के बावजूद भी तुलनात्मक रूप से विशेष विद्यालय की अपेक्षा नियमित विद्यालयों में मानवीय अनुभूतियों के बीच पलते-बढ़ते हैं। उनकी इस भावात्मक व सामाजिक आवश्यकता का सम्मान करते हुए हमें नियमित विद्यालयों के मौजूदा स्वरूप में थोड़े बहुत परिवर्तन करने होंगे जैसे– बुनियादी ढाँचागत सुविधाओं में फेर-बदल, शिक्षण-सामग्रियों, शिक्षण पद्धतियों व मूल्यांकन के तरीकों में फेर-बदल, समय-सारणी में समयानुसार परिवर्तन, पाठ्यपुस्तकों की समयानुसार व आवश्यकतानुसार उपलब्धता आदि और इन सबसे कहीं अधिक महत्वपूर्ण है दृष्टिकोण जो स्वीकृति की अपेक्षा करता है। विद्यार्थियों के अनुभव स्पष्ट करते हैं कि हमारे विद्यालय अभी 'इंक्ल्यूसन' के लिए तैयार नहीं हैं, परंतु उन्हें तैयारी करनी होगी क्योंकि विशेष शिक्षा की अलग से व्यवस्था सामाजिक अलगाव और चुनौतीपूर्ण बच्चों को सामाजिक रूप से व भावात्मक रूप से अकेलेपन की ओर ले जा रही है। यहाँ पर अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों का उत्तरदायित्व बहुत अधिक बढ़ जाता है।